यादवेंद्र आर्य एवं अन्य

बनाम

मुकेश कुमार गुप्ता

दिनांक 28 नवम्बर, 2007

बेंच : डॉ0 अरिजीत पसायत लोकेश्वर सिंह पंत

प्रत्यर्थी/मालिक ने धारा 21(1)(ए) यूपी (शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 के तहत एक आवेदन इस बाबत किया गया था कि प्रत्यर्थी ने हाई स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा उत्तीर्ण की है और वह बेरोजगार शादीशुदा है और उसके पास अपनी आजीविका कमाने के लिए कोई स्वतंत्र व्यवसाय नहीं है और इसलिएए वह उक्त दुकान में सदोषपूर्ण अपना स्वतंत्र व्यवसाय करना चाहता है और उसका आपने पिता के व्यवसाय में शामिल होने की कोई संभावना नहीं है। विहित प्राधिकारी ने इस आवेदन को स्वीकार किया परंतु अपीलीय प्राधिकरण ने अपील स्वीकार कर निचली अदालत के फैसले को निरस्त कर दिया। हालांकि, उच्च न्यायालय ने मालिक के रिट याचिका को स्वीकार कर लिया।

किरायेदारों द्वारा दायर अपील में इसका तर्क दिया गया था की

वास्तविक आवश्यकताओं और तुलनात्मक कठिनाई के परिसिमाओ पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया और याचना की कि इस मामले को पुनः विचरण के लिए निचली प्राधिकरण में भेज दिया जावे।

अपील को खारिज करते हुए न्यायालय ने यह स्थापित किया कि-

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के आलोक में विचार करते हुए इस एवं न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत का मनन करते हुए यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंची कि मकान मालिक के आवेदन को उच्च न्यायालय ने उचित रूप से स्वीकार कर लिया है। तथा ऐसे मामलों में पुनः परीक्षण के लिए निचली प्राधिकरण में प्रकरण को भेजना उचित नही माना गया है यथा इस अदालत द्वारा अनेक प्रकरण में इस तरह की प्रथा की निंदा की गई है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता परिसर में व्यवसाय कर रहे हैं, उन्हें कुछ महीनो में परिसर खाली करने का समय दिया गया। (पैरा 17 और 17)

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील सं. 2007 की 5483

उत्तरांचल उच्च न्यायालय, नैनीताल की रिट याचिका संख्या 247/2002 में पारित निर्णय और अंतिम आदेश दिनांक 23-08-2006 से उत्पन्न।

युनुस मलिक, अभिषेक विकास एवं प्रशांत चौधरी - अपीलार्थी के लिए।

एन.डी.बी. राजु, सी. एम. अंगाडी और रामेश्वर प्रसाद गोयल - प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय डॉ0 अरिजीत पसायत, जे. द्वारा पारित किया गया।

अनुमति प्रदान की गई।

इस अपील में उत्तरांचल उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका को अनुमति प्रदान करते हुए पारित आदेश को चुनौती दी गई है। उक्त प्रत्यर्थी निर्विवाद रूप से विवादित संपत्ति  का मालिक है जिसे वर्तमान अपीलकर्ताओं को किराए पर दिया गया था।

प्रत्यर्थी द्वारा धारा 21(1)(ए) यूपी (शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली का विनियमन ) अधिनियम, 1972 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के तहत एक आवेदन इस बाबत किया गया था कि मोहल्ला बाजार गंज (पार्क रोड), काशीपुर, जिला उधम सिंह नगर में स्थित दुकान से अपीलार्थी को बेदखल किया जावे। उक्त संपत्ति पर अपीलार्थी किरायदार के अधिकार से काबिज है। बेदखल का यह आधार लिया गया की प्रत्यर्थी ने हाई स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा उत्तीर्ण की है और वह बेरोजगार है और उसके पास अपनी आजीविका कमाने के लिए कोई स्वतंत्र व्यवसाय नहीं है और इसलिए, वह उक्त दुकान में इलेक्ट्रिकल सामान, टीवी, वीसीआर, म्यूजिक सिस्टम, कुकिंग रेंज आदि का व्यवसाय

करना चाहता है।

इसके अतिरिक्त, मालिक ने अपने रिलीज आवेदन में यह भी कहा कि उनके पिता श्री मिथिलेश कुमार गुप्ता अपने व्यापार को मिथिलेश कुमार और ब्रदर्स के नाम से स्वतंत्र रूप से कर रहे हैं, जिनके पिता एक मात्र मालिक हैं और किसी अन्य व्यक्ति को नौकरी दिलाने का कोई संभावना नहीं है, क्योंकि उनके पिता की पॉसेशन में वह दुकान इतनी विस्तारित नहीं है जिसमें उत्तराधिकारी को भी समाहित किया जा सके। इसमें यह भी कहा गया कि उन्हें अपने पिता के साथ व्यापार में शामिल होना भी नहीं चाहिए, क्योंकि उन्हें स्वतंत्र व्यापार करना है। रिलीज आवेदन में इसके अतिरिक्त कहा गया है कि उन्होंने पहले ही 1994 में विवाह किया है और वे अपने पिता से अलग हैं और इसलिए विवादित दुकान को अपने उपयोग और आवास के लिए आवश्यक है ताकि वे स्वतंत्र व्यापार में खुद को स्तर पर कर सकें।

उपस्थित अपीलकर्ताओं द्वारा आपने जवाब दावा में यह आधार लिया गया है कि मकान मालिक को पिता के व्यवसाय में समायोजित किया जा सकता है।

प्रत्यर्थी द्वारा एक हलफनामा दायर किया गया था जिसमें कहा गया था कि वह स्वतंत्र व्यवसाय चलाना चाहता है और वह अपने पिता के साथ खुद को स्थापित नहीं कर सकता है। जहां तक अन्य दुकानों की उपलब्धता का सवाल है, यह विशेष रूप से कहा गया था कि अन्य सभी दुकानें किराए

पर हैं और किरायेदारों का कब्जा है।

विहित प्राधिकारी, काशीपुर जिला उधम सिंह नगर ने प्रत्यर्थी के आवेदन को स्वीकार करते हुए अपीलकर्ताओं को 30 दिनों की अवधि के भीतर दुकान खाली करने का निर्देश दिया।

इस आदेश से आहत होकर अपीलकर्ताओं ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर की जो की स्वीकृत। इसके उपरांत प्रत्यर्थी ने अनुच्छेद 227 ए भारत के संविधान, 1950 (संक्षेप में "संविधान") के तहत माननीय उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की। जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया गया है, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी की रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और अपीलकर्ताओं को परिसर से बेदखल होने का निर्देश दिया।

अपील के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह संतोष व्यक्त किया गया कि वास्तविक आवश्यकताओं और तुलनात्मक कठिनाई से संबंधित मापदंडों पर उचित परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है।

दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के फैसले का समर्थन किया, कहते हुए कि उच्च न्यायालय ने तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखा और उपयुक्त और लागू सिद्धांतों का अनुपालन किया है, और इसलिए कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

जहां तक बुनियादी आवश्यकता की अवधारणा का सवाल है इस सिद्धांत को अखिलेश्वर कुमार और अन्य बनाम मुस्तकीम और अन्य मामले

में, एआईआर 2003 एससी 532, इसे अन्य बातों के साथ.साथ यह स्पष्ट किया है कि-

"हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण सही नहीं माना जा सकता है और इसने न्याय में असफलता का कारण बनाया है। प्प्रकरण में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं कि वादी संख्या 1 बिना किसी पर्याप्त वाणिज्यिक गतिविधि के परिसर पर काबिज है। वादी संख्या 1 और उनके पिता दोनों इस तथ्य की पुष्टि आपने गवाही में दे चुके हैं। बस इसलिए कि वादी संख्या 1 अपने पिता को अपने पारिवारिक व्यापार में अस्थायी रूप से सहायता कर देता है, इसका मतलब नहीं है कि वह कभी अपना स्वतंत्र व्यापार शुरू नहीं कर सकता। उच्च न्यायालय ने जो बात नजरअंदाज की है, उस तथ्य को विचरण न्यायालय के द्वारा भी आपने चिंतन में लिया गया  है कि वादी संख्या 4 के पति, अर्थात् राम चंद्र साओ के दामाद, उनके व्यापार में सहायता कर रहे थे और अन्य तीन बेटों के द्वारा उसमें कुछ खास योगदान देने को बचा ही नहीं था।"

उच्च न्यायालय ने भी माना है कि वैकल्पिक आवास की उपलब्धता के मामले में भी यही स्थिति है। एक दुकान है जिसके संबंध में वादी संख्या 2 ने आवश्यकता के आधार पर बेदखली का मुकदमा दायर किया था। मुकदमे में समझौता हो गया और दुकान खाली हो गई। यह दुकान वादी संख्या 2 के व्यवसाय के लिए निर्धारित किया गया था। वादी के पिता द्वारा निर्मित एक अन्य दुकान है जो एक सेप्टिक टैंक के ऊपर स्थित

है लेकिन वह लगभग दुर्गम है क्योंकि दुकान के सामने एक गहरी खाई है और इसीलिए यह खाली और अप्रयुक्त पड़ा हुआ है। एक बार जब किसी मकान मालिक द्वारा यह साबित कर दिया जाता है कि उसे अपने उद्देश्य के लिए उपयुक्त आवास की आवश्यकता है और ऐसी संतुष्टि न्यायालय द्वारा तथ्यों के वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन की परीक्षा पर खरी उतरती है तो ऐसे आवास का चयन करना होगा जो ऐसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उचित होगा। इसे जरूरतमंद की व्यक्तिपरक पसंद पर छोड़ दिया जाना चाहिए। न्यायालय जरूरतमंद पर अपनी पसंद नहीं थोप सकता। निःसंदेह, चुनाव युक्तियुक्त रूप से किया जाना चाहिए न कि मनमाने ढंग से। उच्च न्यायालय के पास जो वैकल्पिक आवास प्रचलित हैं, वे या तो वादी संख्या 1 के लिए उपलब्ध नहीं हैं या सभी प्रकार से उपयुक्त नहीं हैं। उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण कि वादी संख्या 2 जो की एक शिक्षित परंतु बेरोजगार व्यक्ति है, उसके आवश्यकता को पूरा करने के लिए एक आवास खाली कराया जाना चाहिए क्योंकि पूर्व में वादी संख्या 1 जो भी एक अन्य शिक्षित बेरोजगार भाई है उसकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए प्रासंगिक वैकल्पिक आवास के रूप में माना गया था। इसलिए एक दुकान जो सेप्टिक टैंक के ऊपर स्थित है और दुकान के सामने एक खाई के कारण दुर्गम है और इसलिए खाली पड़ी है, उसे वैकल्पिक दुकान के लिए उपयुक्त विकल्प नहीं माना जा सकता है जहां उसके बदले में वादी ने अपनी आवायकता पूरी करने को बाजार परिसर में स्थित एक दुकान को क्रय कर लिया है जहा आसानी से पहुंच योग्य है।

राघवेंद्र कुमार बनाम फर्म प्रेम मशीनरी एंड कंपनी में [2000(1) एससीसी 679] इसे इस प्रकार से अभिनिर्धारित किया गया था-

"यह कानून की सुस्थापित स्थिति है कि मकान मालिक आवासीय या व्यावसायिक उद्देश्य के लिए अपनी आवश्यकता का उचित निर्धारक है और उसे इस मामले में पूर्ण स्वतंत्रता मिली हुई है। (देखें) प्रतिवा देवी (श्रीमती) बनाम टीवी कृष्णन, (1996)5)]एससीसी 353] मौजूदा मामले में वादी-मकान मालिक अपना व्यवसाय शुरू करने के लिए सूट परिसर से किरायेदार को बेदखल करना चाहता था क्योंकि यह उपयुक्त था और इसे गलत नहीं ठहराया जा सकता था।"

जोगिंदर पाल बनाम नवल किशोर बेहल ,(2002)5) एससीसी) में इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया-

"माल्पे विश्वनाथ आचार्य और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (1998) 2 एससीसी 1) में इस न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी हितों के बीच संतुलन बनाते हुए किराया नियंत्रण अधिनियम जैसे सामाजिक कानूनों की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि कानून न्यायसंगत हो सके। "कानून को किसी के प्रति अन्यायपूर्ण नहीं होना चाहिए और समाज के किसी अन्य वर्ग को असंगत लाभ या सुरक्षा नहीं देनी चाहिए"। जबकि आवास की कमी के कारण किरायेदारों को शोषण से बचाने के लिए उनकी रक्षा करना आवश्यक हो जाता है, लेकिन साथ ही किरायेदार की सुरक्षा की आवश्यकता यह सुनिश्चित करने के दायित्व के साथ जुड़ी होती है कि किरायेदारों को

जरूरत से ज्यादा बड़ा लाभ न दिया जाए। सामाजिक रूप से प्रगतिशील कानून में समग्र धारणा होनी चाहिए न कि अदूरदर्शी संकीर्ण दृष्टिकोण। सामाजिक रूप से प्रगतिशील कानून बनाने की शक्ति मनमानी और अनुचितता से बचने की जिम्मेदारी के साथ जुड़ी हुई है। ऐसा कानून जो एक हिस्से को अनुचित प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति के साथ हैए दूसरे हिस्से पर बेडिया डालने के साथए न केवल अन्याय को बढ़ाता है बल्कि संवैधानिक रूप से अवैध भी हो सकती है।"

इस न्यायालय द्वारा बेगा बेगम बनाम अब्दुल अहद खान (1979 एआईआर एससी 273) में किराया नियंत्रण कानूनों की उचित व्याख्या की आवश्यकता पर बल दिया गया था। किराएदार के उचित आवश्यकता के संदर्भ में बोलते हुए, न्यायालय ने यह हिदायत दी कि किसी प्रकार की कृत्रिम विस्तार से बचने के लिए भाषा को खिचकने या तनने के साथ खिचकने से बचा जाना चाहिए ताकि भूमि मालिक को खाली कराने का आदेश पाना संभव हो या अत्यधिक कठिन न हो जाए। न्यायालय ने इस बात से चेतावनी दी की ऐसा कार्रवाई करने से यह कानून के उद्देश्य को ही अवांछित कर देगा, जिसमें किराएदार को कुछ विशिष्ट आधारों पर भूमि मालिक के लिए किराएदार को खाली कराने की सुविधा प्रदान की गई है। केवल सिंह बनाम लाजवंती में (1980) 1 एससीसी 290) इस न्यायालय ने कहा है, जबकि किराया नियंत्रण कानून ने किरायेदारों को कई सुविधाएं दी हैं, इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि यह उस सीमित राहत को

नष्ट कर देगा जो वह मकान मालिक को भी देना चाहता है। उदाहरण के लिएए बेदखली का एक आधार जो देश के लगभग सभी किराया नियंत्रण अधिनियमों में निहित है, वह मकान मालिक की वास्तविक व्यक्तिगत आवश्यकता का प्रश्न है। वास्तविक आवश्यकता की अवधारणा को सार्थक ढंग से समझा जाना चाहिए ताकि मकान मालिक को दी गई राहत वास्तविक और व्यावहारिक हो सके। हाल ही में शिव सरूप गुप्ता बनाम डॉ० महेश चंद गुप्ता मामले में (1999) 6 एससीसी 222) न्यायालय ने माना है कि वास्तविक आवश्यकता या वास्तविक आवश्यकता की अवधारणा को जीवन की वास्तविकताओं द्वारा निर्देशित एक व्यावहारिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अत्यधिक उदार या अत्यधिक रूढ़िवादी या पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण से बचना चाहिए।

किराया नियंत्रण कानून किरायेदारों के पक्ष में झुका हुआ हैं, उन्हें समाज का कमजोर वर्ग मानते हुए प्रभितावशाली जमींदारों के शोषण और बेईमान उपकरणों के खिलाफ विधायी सुरक्षा की आवश्यकता है। कानूनों की व्याख्या करते समय अदालतों को विधायी मंशा का सम्मान करना चाहिए। लेकिन यह विधायिकाओं के स्तर पे एक खामी होगी अगर वो वे केवल किरायेदारों के पक्ष में झुकते हैं और किरायेदारों के प्रति निष्पक्ष रहते हुएए मकान मालिकों के साथ अन्याय करने की हद तक चले जाते हैं। विधायिका किरायेदारों और मकान मालिकों दोनों के प्रति निष्पक्ष होना चाहिए। किराया नियंत्रण कानूनों की व्याख्या करते समय अदालतों को एक

उचित और संतुलित दृष्टिकोण अपनाना होगाए जिसकी शुरुआत इस धारणा से होगी कि समाज के दोनों वर्गों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। कुल मिलाकर किरायेदारों के पक्ष में झुकाव के बावजूद, मकान मालिक के हितों का ख्याल रखने वाले प्रावधानों की व्याख्या करते समय अदालत को मकान मालिकों के पक्ष में झुकाव में संकोच नहीं करना चाहिए। ऐसे प्रावधानों को किराया नियंत्रण कानूनों में शामिल किया गया है ताकि उन स्थितियों का ध्यान रखा जा सके जहां मकान मालिक भी कमजोर और कमज़ोर हैं और विनम्र महसूस करते हैं।

किसी भी शब्द या अभिव्यक्ति के अर्थ प्रदान करने में उस शब्द का किस संदर्भ में उपयोग लिया गया है वो भी महत्वपूर्ण होता है जिसमें वह सेट किया गया है। संदर्भ से निकलने वाले रंग और सामग्री केवल अर्थ के बजाय अर्थ को प्राथमिकता देने की अनुमति दे सकते हैं, जो इस बात पर निर्भर करता है कि उससे क्या हासिल किया जाना है और अभिव्यक्ति के आस पास की विधायी मंशा द्वारा क्या रोका जाना है। भूमि मालिक की निजी आवश्यकताएं एक ऐसी अभिव्यक्ति है जिसमें विधायिक द्वारा यह मंशा प्रकट होती है कि मकान मालिक उससे किरायदार को कभी भी अपने किराया की आमदनी को समाप्त कर बेदखल कर देगा और उस परिसर को अपने निजी उपयोग में अपने सहूलियत को ध्यान में रखते हुए करा सकेगा। विधायिका ने जब किराएदार की सुरक्षा के लिए कानून बनाई है तो भी उसे मालिक की सद्भावी आवश्यकता के आगे झुकना पड़ता है

ताकि मालिक उसका उपयोग किराए के बजाए किसी और उपयोग में ली सके।

यदि हम आवश्यकता की अवधारणा का अर्थपूर्ण अर्थ नहीं निकालते हैं तो प्रावधान अनुचित, मनमाना या मालिक के अपनी संपत्ति रखने और उपयोग करने के अधिकार पर अनावश्यक और अनुचित प्रतिबंध लगाने के रूप में ब्रांडेड होने के जोखिम से ग्रस्त हो सकता है। हम अपने स्वयं के उपयोग के लिए, अभिव्यक्ति पर इस तरह से कोई निर्माण नहीं कर सकते हैं कि मकान मालिक को अपने किरायेदार को बेदखल करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाए, जब उसे अपने बेटे को अपने जीवन में बसने के लिए आवास की आवश्यकता हो। हमें अभिव्यक्ति को रंग और अर्थ देनी होगी और शब्दों के कंकाल को एक जीवित विचार प्रदान करनी होगीए जिसे विधायिका ने परिभाषित करने के लिए स्वयं नहीं चुना है। भारतीय समाजएअधिनियम की धारा 13(3)(ए) (ii).

(1) वर्तमान मामले में, अपने चार्टर्ड अकाउंटेंट बेटे के कार्यालय के रूप में उपयोगकर्ता के लिए सूट परिसर के मकान मालिक की आवश्यकता धारा 13 (3)(ए) के अर्थ के भीतर, अपने स्वयं के उपयोग के लिए, मकान मालिक की आवश्यकता माना गया था। "

जीसी कपूर बनाम नंद कुमार भसीन (एआईआर 2002 एससी 200) में फिर से इसी प्रकार का वर्णन करते हुए यह कहा गया था कि-

"यह कानून की सुस्थापित स्थिति है कि वास्तविक आवश्यकता का मतलब है कि आवश्यकता ईमानदार होनी चाहिए और किसी भी अप्रत्यक्ष उद्देश्य से दूषित नहीं होनी चाहिए और यह केवल एक इच्छा या इच्छा नहीं है। नयाय दृष्टांत दत्तात्रेय लक्ष्मण कांबले बनाम अब्दुल रसूल मौलाली कोटकुंडे और अन्य (1999 (4)SCC1) में मकान मालिक की वास्तविक आवश्यकता पर विचार करते समय इस न्यायालय का विचार था कि जब एक मकान मालिक कहता है कि उसे अपने व्यवसाय के लिए आपने घर की आवश्यकता है, तो उसे इसे साबित करना होगा, लेकिन ऐसी कोई प्राकल्पना नहीं है कि उसकी आवश्यकता सदोषपूर्ण नहीं है "। यह भी माना गया कि इस प्रश्न पर निर्णय लेते समय न्यायालय व्यापक पहलुओं पर गौर करेगा और यदि न्यायालय को सदोष आवश्यकता के बारे में कोई संदेह महसूस होता है, तो ऐसे संदेह को दूर करना मकान मालिक का काम है।"

रघुनाथ जी पन्हाले (मृतक) जरीये विधिक प्रतिनिधी बनाम छगनलाल सुंदरजी एंड कंपनी (1999)8)एससीसी1) में इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह माना कि मकान मालिक के लिए यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि उसके पास नए व्यवसाय में निवेश करने के लिए पैसा था और न ही उसके पास इसका अनुभव था। यह गैर आवासीय उद्देश्य के लिए आदेश आवश्यकता के आधार पर बेदखली का मामला थाए क्योंकि वह अपनी आजीविका में वृद्धि के लिए सूट परिसर में किराना

व्यवसाय शुरू करना चाहता था।"

न्यायिक दृष्टांत एमएसटी में  बेगम बेगम और अन्य। V अब्दुल अहद खान (डी)एलआरएस एवं अन्य(1979)1) एससीसी 273) में इस न्यायालय के पास कठिनाई के पहलू पर तुलनात्मक विचार करने का अवसर मिला-

"अधिनियम के धारा 11(एच) में "उचित आवश्यकता " शब्दों का उपयोग किया गया है, जो निस्संदेह यह बताता है कि मात्र उसके मालिक की इच्छा के विपरीत आवश्यकता का एक तत्व होना चाहिए। इच्छा और आवश्यकता के बीच अंतर को निस्संदेह ध्यान में रखा जाना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं कि वास्तविक आवश्यकता को भी इच्छा का सकल दी दिया जाए, जैसा कि उच्च न्यायालय ने इस मामले में किया है। हमें ऐसा लगता है कि आवश्यकता शब्द के अर्थ को कृत्रिम रूप से विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए और न ही इसकी भाषा को इतना अनावश्यक रूप से बढ़ाया या तनाव किया जाना चाहिए कि एक मकान मालिक के लिए बेदखली का डिक्री प्राप्त करना असंभव या अत्यंत कठिन हो जाए। ऐसा कदम अधिनियम के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा जो कुछ निर्दिष्ट आधारों पर मकान मालिक को किरायेदार को बेदखल करने की सुविधा प्रदान करता है। यह हमें देश के अन्य राज्यों में प्रचलितए सभी किराया नियंत्रण अधिनियमों की सामान्य योजना प्रतीत होती है। इस न्यायालय ने आवश्यकता शब्द पर विचार किया है और बताया है कि इसका तात्पर्य

केवल यह है कि आवश्यकता का एक तत्व होना चाहिए।

इस संबंध में हमारा ध्यान प्रतिवादियों द्वारा पेश किए गए सबूतों की ओर आकर्षित किया गया था कि उनकी आय का मुख्य स्रोत परिसर में उनके द्वारा किया जाने वाला होटल व्यवसाय है और यदि उन्हें बाहर निकाल दिया जाता है तो उन्हें कोई वैकल्पिक आवास मिलने की संभावना नहीं है। उच्च न्यायालय ने इस बिंदु पर प्रतिवादियों के तर्क को स्वीकार कराए लेकिन ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि उन्होंने इसके मालिक और किरायेदार पर पड़ने वाले प्राकृतिक परिणामों पर विचार कियाए जो बेदखली आदेश आने के उपरांत मकान मालिक और किरायेदार के फायदे और नुकसान के तुलनात्मक मूल्यांकन से ही स्पष्ट हो पाएंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि बेदखली का डिक्री पारित किया जाता है तो किरायेदार को परिसर से बाहर निकालना होगा, लेकिन ऐसी घटना तब होती है जब बेदखली का डिक्री पारित हो जाती है जो उपयुक्त विधि के प्रयोग से ही हो सकती है। इसके लिए विधायिका ने अपने विवेक का उपयोग करते हुए अधिनियम की धारा 11 (1)(एच) पारित किया हैं। इसलिए उपर्युक्त आधार ही अपने आप में वादी को बेदखली से इनकार करने का वैध आधार नहीं होगा।

इस प्रकार, मकान मालिक और किरायेदार के सापेक्ष लाभ और हानि की सावधानीपूर्वक तुलना और मूल्यांकन करने पर हमें ऐसा लगता है कि पैमाना वादी के पक्ष में है। वादी के पक्ष में बेदखली के डिक्री को अस्वीकार

करने से होने वाली असुविधाएं हानि और परेशानी उस दृष्टिकोण से बेदखली से कहीं अधिक है।"

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह प्रस्तुत किया कि प्रकरण को पुनः विचरण के लिए दोबारा अधिकरण के समक्ष भेजा जावे। इस अदालत द्वारा अनेक प्रकरण में इस तरह की प्रथा की निंदा की गई है। [देखें: आरवीई वेंकटचला गौंडर बनाम अरुल्मिगु विश्वेसरास्वामी और वीपी टेम्पल और अन्य। (2003 (8) एससीसी 752),।

ऊपर बताए गए सिद्धांतों के आलोक में तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुएए अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि यह अपील निराधार है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता परिसर में व्यवसाय कर रहे हैं, उन्हें जून, 2008 के अंत तक परिसर खाली करने का समय दिया जाता है, बशर्ते कि वे चार सप्ताह की अवधि के भीतर निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष इसके बाबत एक अंडरटेकिंग प्रस्तुत करा दें।

खर्चे के कोई आदेश के बिना यह अपील खारिज की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी अंकित रमन (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

**अस्वीकरण:** यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।